



पारिस्थितिकी तंत्र, पर्यावरण प्रदूषण तथा सतत विकास की अवधारणा और पर्यावरण संरक्षण के नवितम उपाय व अत्याधुनिक ग्रीन टेक्नोलॉजी

भूपेन्द्र कुमार जाँगिड, डॉ० राजू शर्मा

1 शोधार्थी, भूगोल विभाग, श्री जगदीश प्रसाद झाबर मल टिबडेवाला विश्वविद्यालय, चुडेला (झुंझुनू) राजस्थान, भारत।

2 शोध निर्देशक, श्री जगदीश प्रसाद झाबर मल टिबडेवाला विश्वविद्यालय, चुडेला (झुंझुनू) राजस्थान, भारत।

प्रस्तावना

आधुनिक युग में विकास के नाम पर मानव प्रकृति से छेड़छाड़ करने पर तुला है, परिणामस्वरूप मृदा, जल और वायु के भौतिक और रासायनिक गुणों में परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इस परिवर्तन का असर सभी जैविक घटकों पर पड़ रहा है। ये परिवर्तन ही प्रदूषण का निर्माण करते हैं। रसायनयुक्त जल के सेवन से मानव में डायरिया, पीलिया, त्वचा रोग, फ्लोरोसिस, विकलांगता, नेत्र विकार, यूरेनिया आदि रोग हो जाते हैं। विविध प्रकार के वातावरण में भिन्न-भिन्न प्रकार के जीव पाए जाते हैं। सभी जीव, अपने चारों ओर के वातावरण से प्रभावित होते हैं। सभी जीव अपने वातावरण के साथ एक विशिष्ट तंत्र का निर्माण करते हैं, जिसे "पारिस्थितिकी तंत्र" कहते हैं। जीवों और वातावरण के इस संबंध को पारिस्थितिकी कहा जाता है। सन् 1965 में ओडम ने पारिस्थितिकी के लिए प्रकृति की संरचना तथा कार्यों का अध्ययन नाम नई परिभाषा दी। विभिन्न वैज्ञानिकों ने पारिस्थितिकी तंत्र की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी हैं। सबसे सरल परिभाषा है, "प्राणियों एवं वनस्पतियों के परस्पर संबंधों और इनके पर्यावरण से संबंधों का अध्ययन"

इको-सिस्टम या पारिस्थितिक तंत्र क्या है? इसे समझने के लिए हम कल्पना करें एक तालाब की, जहां मछलियां, मेंढक, शैवाल, जलीय पुष्प और अन्य कई जलीय जीव रहते हैं। ये सभी न केवल एक-दूसरे पर आश्रित हैं, अपितु जल, वायु, भूमि जैसे अजैविक घटकों के साथ भी पारस्परिक रूप से जुड़े हुए हैं। समुदाय का यह पूर्ण तंत्र, जिसमें अजैविक घटकों तथा जैविक घटकों का पारस्परिक संबंध ही पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करता है।

पारिस्थितिकी तंत्र की विशेषताएं

1. पारिस्थितिकी तंत्र एक कार्यशील क्षेत्रीय इकाई होता है, जो क्षेत्र विशेष के सभी जीवधारियों एवं उनके भौतिक पर्यावरण के सकल योग का प्रतिनिधित्व करता है।
2. इसकी संरचना तीन मूलभूत संघटकों से होती है— (क) ऊर्जा संघटक, (ख) जैविक (बायोम) संघटक, (ग) अजैविक या भौतिक (निवास्य) संघटक (स्थल, जल तथा वायु)।
3. पारिस्थितिकी तंत्र जीवमंडल में एक सुनिश्चित क्षेत्र धारण करता है।
4. किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र का समय इकाई के संदर्भ में पर्यवेक्षण किया जाता है।
5. ऊर्जा, जैविक तथा भौतिक संघटकों के मध्य जटिल पारिस्थितिकी अनुक्रियाएं होती हैं, साथ-ही-साथ विभिन्न जीवधारियों में भी पारस्परिक क्रियाएं होती हैं।

6. पारिस्थितिकी तंत्र एक खुला तंत्र होता है, जिसमें ऊर्जा तथा पदार्थों का सतत् निवेश तथा उससे बहिर्गमन होता रहता है।
7. जब तक पारिस्थितिकी तंत्र के एक या अधिक नियंत्रक कारकों में अव्यवस्था नहीं होती, पारिस्थितिकी तंत्र अपेक्षाकृत स्थिर समस्थिति में होता है।
8. पारिस्थितिकी तंत्र प्राकृतिक संसाधन होते हैं अर्थात् यह प्राकृतिक संसाधनों का प्रतिनिधित्व करता है।
9. पारिस्थितिकी तंत्र संरचित तथा सुसंगठित तंत्र होता है।
10. प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में अंतर्निमित्त नियंत्रण की व्यवस्था होती है। अर्थात् यदि पारिस्थितिकी तंत्र के किसी एक संघटक में प्राकृतिक कारणों से कोई परिवर्तन होता है तो तंत्र के दूसरे संघटक में परिवर्तन द्वारा उसकी भरपाई हो जाती है, परंतु यह परिवर्तन यदि प्रौद्योगिकी मानव के आर्थिक क्रियाकलापों द्वारा इतना अधिक हो जाता है कि वह पारिस्थितिकी तंत्र के अंतर्निमित्त नियंत्रण की व्यवस्था की सहनशक्ति से अधिक होता है तो उक्त परिवर्तन की भरपाई नहीं हो पाती है और पारिस्थितिकी तंत्र अव्यवस्थित तथा असंतुलित हो जाता है एवं पर्यावरण अवनयन तथा प्रदूषण प्रारंभ हो जाता है।

पारिस्थितिकी तंत्र के प्रकार

1. **निवास्य क्षेत्र के आधार पर वर्गीकरण** : निवास्य क्षेत्र, जीव मंडल के खास क्षेत्रीय इकाई के भौतिक पर्यावरण की दशाएं, जैविक समुदायों की प्रकृति तथा विशेषताओं को निर्धारित करता है। चूंकि भौतिक दशाओं में क्षेत्रीय विभिन्नताएं होती हैं, अतः जैविक समुदायों में भी स्थानीय विभिन्नताएं होती हैं। इस अवधारणा के आधार पर पारिस्थितिकी तंत्रों को दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जाता है—

(क) पार्थिव पारिस्थितिकी तंत्र :- भौतिक दशाओं तथा उनके जैविक समुदायों पर प्रभाव के अनुसार पार्थिव या स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्रों में विभिन्नताएं होती हैं। अतः पार्थिव पारिस्थितिकी तंत्रों को पुनः कई उपभागों में विभाजित किया जाता है यथा (अ) उच्च स्थलीय या पर्वत पारिस्थितिकी तंत्र (ब) निम्न स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र, (स) उष्ण रेगिस्तानी पारिस्थितिकी तंत्र तथा (द) शीत रेगिस्तानी पारिस्थितिकी तंत्र। विशिष्ट अध्ययन एवं निश्चित उद्देश्यों के आधार पर इस पारिस्थितिकी तंत्र को कई छोटे भागों में विभाजित किया जाता है।

(ख) जलीय पारिस्थितिकी तंत्र :- जलीय पारिस्थितिकी तंत्र को दो प्रमुख उपभागों में विभाजित किया जाता है :- (अ) ताजे जल वाले-ताजे जल वाले पारिस्थितिकी तंत्रों को पुनः कई भागों में विभाजित किया जाता है-सरिता पारिस्थितिक तंत्र, झील

पारिस्थितिकी तंत्र, जलाशय पारिस्थितिकी तंत्र, दलदल पारिस्थितिकी तंत्र, आदि। (ब) सागरीय पारिस्थितिकी तंत्र—सागरीय पारिस्थितिकी तंत्रों को खुले सागरीय पारिस्थितिकी तंत्र, तटीय ज्वानद मुखी पारिस्थितिकी तंत्र, कोरलरिफ पारिस्थितिकी तंत्र आदि उप-प्रकारों में विभाजित किया जाता है। सागरीय पारिस्थितिकी तंत्रों को दूसरे रूप में भी विभाजित किया जा सकता है। यथा—सागरीय पारिस्थितिकी तंत्र तथा सागर—नितल पारिस्थितिकी तंत्र।

2. क्षेत्रीय मापक के आधार पर वर्गीकरण : क्षेत्रीय मापक या विस्तार के आधार पर विभिन्न उद्देश्यों के लिए पारिस्थितिकी तंत्रों को अनेक प्रकारों में विभाजित किया जाता है। समस्त जीवमंडल वृहत्तम पारिस्थितिकी तंत्र होता है। इसे दो प्रमुख प्रकारों में विभाजित किया जाता है :- (अ) महाद्वीपीय पारिस्थितिकी तंत्र, (ब) महासागरीय या सागरीय पारिस्थितिकी—तंत्र। आवश्यकता के अनुसार क्षेत्रीय मापक को घटाकर एकाकी जीव (पादप या जंतु) तक लाया जा सकता है। उदाहरण के लिए जीवमंडलीय पारिस्थितिकी तंत्र, महाद्वीपीय पारिस्थितिकी तंत्र, पर्वत, पठार, मैदान पारिस्थितिकी तंत्र, सरिता, झील, जलाशय पारिस्थितिकी तंत्र, फसल क्षेत्र पारिस्थितिकी तंत्र, गोशाला पारिस्थितिक तंत्र, एकाकी पादप पारिस्थितिकी तंत्र, पेड़ की जड़ या ऊपरी वितान का पारिस्थितिकी तंत्र।

3. उपयोग के आधार पर वर्गीकरण : विभिन्न उपयोगों के आधार पर पारिस्थितिकी तंत्रों को कई प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए ई.पी. ओडम (1959) ने नेट प्राथमिक उत्पादन तथा कृषि विधियों के उपयोग के आधार पर पारिस्थितिकी तंत्रों को दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया है—
(अ) कृषित पारिस्थितिकी तंत्र :- कृषित पारिस्थितिकी तंत्रों को प्रमुख फसलों के आधार पर कई उप-प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। यथा—गेहूँ क्षेत्र पारिस्थितिकी—तंत्र, चारा क्षेत्र पारिस्थितिकी तंत्र आदि।
(ब) अकृषित पारिस्थितिकी तंत्र :- अकृषित पारिस्थितिकी तंत्रों को वन पारिस्थितिकी तंत्र, ऊँची, घास पारिस्थितिक तंत्र, बंजर—भूमि पारिस्थितिकी तंत्र, दलदल क्षेत्र पारिस्थितिकी तंत्र आदि।

पर्यावरण प्रदूषण

संरक्षण जहाँ असफल होता है, वहीं प्रदूषण की शुरुआत होती है। आधुनिक युग में विकास के नाम पर मानव प्रकृति से छेड़छाड़ करने पर तुला है, परिणामस्वरूप मृदा, जल और वायु के भौतिक और रासायनिक गुणों में परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इस परिवर्तन का असर सभी जैविक घटकों पर पड़ रहा है। ये परिवर्तन ही प्रदूषण का निर्माण करते हैं।

वायु प्रदूषण

कल कारखानों का धुआं, ईंधन का धुआं, वाहनों का धुआं, धूल के कण और जलवाष्प आदि वायुमंडल में एकत्रित हो जाते हैं, जिससे वायु की गुणवत्ता नष्ट हो जाती है। उसे ही वायु प्रदूषण या प्रदूषित वायु कहा जाता है।

वायु प्रदूषण के कारण

1. धुआं :- घरेलू ईंधन से धुआं, कारखानों से निकलने वाला धुआं, कचरा जलाने से धुआं, वाहनों से निकलता धुआं। इस धुएँ में हाइड्रोकार्बन, कार्बन के कण, कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, नाइट्रोजन के ऑक्साइड आदि उपस्थित रहते हैं।

ये सभी कण मानव के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालते हैं। पेड़ों की पत्तियों और शाखाओं में जमकर उन्हें भी क्षतिग्रस्त करते हैं।

2. स्वचालित वाहन :- ट्रैक्टर, ट्रक, कार, स्कूटर, टैप्सों, बस आदि वाहनों में डीजल या पेट्रोल के जलने से विषैली गैस निकलकर वातावरण को प्रदूषित करती है। चलती हुई वाहन की अपेक्षा चालू वाहन में खड़े वाहन से निकलता धुआं ज्यादा खतरनाक होता है, क्योंकि इस धुएँ में प्रदूषक की सांद्रता होती है।

3. औद्योगीकरण :- बढ़ती हुई जनसंख्या ने गरीबी को और गरीबी ने प्रदूषण को जन्म दिया है। बढ़ती हुई जनसंख्या ने विकास के नाम पर औद्योगीकरण को भी जन्म दिया है। कारखानों की चिमनियों से निकलने वाले धुएँ में पारा, जिंक, सीसा, आर्सेनिक जैसे धातुओं के सूक्ष्म कण होते हैं, इसके अलावा प्रदूषक गैस भी होती है।

4. कृषि क्षेत्र :- फसल को कीटों के आक्रमण से बचाने तथा अधिक उत्पादन के लिए किसान खेतों में विभिन्न प्रकार के रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों का प्रयोग करते हैं। ये रासायनिक पदार्थ जल में घुलकर भूमि को तथा नदी—नालों में जल को प्रदूषित करते हैं।

5. खरपतवार :- गाजर घास और कुछ खरपतवारों के परागकण वायुमंडल में बिखरकर प्रदूषक का कार्य करते हैं। इससे दमा की बीमारी होती है। महानीम वृक्ष के पुष्पों के परागकण भी प्रदूषण फैलाते हैं।

वायु प्रदूषण के प्रभाव

वायु प्रदूषण का प्रभाव न केवल जैविक घटकों पर, अपितु इमारतों, पर, कपड़ों एवं धातुओं पर भी पड़ता है। मानव में श्वास तथा त्वचा संबंधी रोग तो होते ही हैं, शरीर से हिस्टामाइन रसायन का त्वचा के माध्यम से रिसाव होने लगता है। पत्तियों का पीला पड़ जाना, जल जाना, चकते पड़ जाना, कलियों का बिना खिले ही सूख जाना, फलों का धब्बेदार हो जाना, पशुओं का चारा विषाक्त हो जाना, यह सब वायु प्रदूषण का ही प्रभाव है।

वायु प्रदूषण का नियंत्रण

वायु प्रदूषण का नियंत्रण आज एक प्राथमिक आवश्यकता है। लोगों में जागरूकता उत्पन्न कर, सामाजिक चेतना द्वारा, कानूनी कार्यवाही द्वारा प्रदूषण पर नियंत्रण का प्रयास किया जा रहा है, पर उस प्रदूषण का क्या करें, जो मानव द्वारा मानव के नाश के लिए किया जा रहा है।

श्रमिकों को कारखाने के अंदर मास्क लगाकर जाना अनिवार्य होना चाहिए। वायु प्रदूषण के नियंत्रण का सबसे सहज उपाय वृक्षारोपण है। बरगद की पत्तियों में ज्यादा प्रदूषण सोखने क क्षमता होती है तथा पाइंस के वृक्ष नाइट्रोजन के ऑक्साइड का अवशोषण करते हैं। ऐसे वृक्ष कारखानों के समीप और सड़क के किनारे लगाने चाहिए। जिससे कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण और ऑक्सीजन का विमोचन करता है। घर में तुलसी का पौधा लगाना अच्छा माना जाता है। मदार, कनेर, वोगनवेलिया ये पौधे भी प्रदूषण को अवशोषित करते हैं।

जल प्रदूषण

जल—जीवन अमृत जल जीवनदायिनी तत्व है। जीवन की शुरुआत

ही जल से हुई है। जल बिना जीवन का अस्तित्व ही नहीं है। जब जल के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में परिवर्तन हो जाए और इस परिवर्तन का असर समस्त जल मंडल और जीव मंडल पर पड़े, तब यह जल प्रदूषित जल कहलाता है।

जल प्रदूषण के कारण

1. औद्योगिक विकास : प्रगति के नाम पर मानव नए-नए उद्योग धंधों का विकास कर रहा है। इन उद्योग-धंधों में रासायनिक, कीटनाशी, पीड़कनाशी बनाए जाते हैं, कहीं चमड़े का शोधन होता है तो कहीं इस्पात का कारखाना है। इन सबसे जल इतना दूषित हो जाता है कि इसमें वनस्पति नष्ट हो जाती है। इसी जल को व्यक्ति नहाने तथा पीने में उपयोग करते हैं और अनेक बीमारियों से ग्रसित होते हैं।

2. अपमार्जक विकास : आज हर घर में नहीने, कपड़े धोने और बर्तन धोने के लिए विभिन्न प्रकार के साबुन का उपयोग किया जाता है। सिर्फ विम, निरमा जैसे कई डिटरजेंट इनके उदाहरण हैं। धुलने के पश्चात् इन पदार्थों को जल में विसर्जित कर दिया जाता है। साबुन युक्त जल नदी-नालों और तालाब के जल को दूषित करते हैं तथा जीवधारियों को नुकसान पहुंचाते हैं।

3. कीटनाशी : फसलों को उन्नत बनाने के लिए कीटनाशी रसायनों का उपयोग किया जाता है, ये रसायन में घुलकर खेतों के माध्यम से नदी-तालाबों तक पहुंचते हैं और जल को प्रदूषित करते हैं।

जल प्रदूषण का प्रभाव

पृथ्वी पर जल का वितरण असमान तरीके से होता है। किसी क्षेत्र में अत्यधिक जल तो कहीं सूखा, परिणामस्वरूप वायु की अपेक्षा जल प्रदूषण गंभीर मसला है। रसायनयुक्त जल के सेवन से मानव में डायरिया, पीलिया, त्वचा रोग, प्लोरोसिस, विकलांगता, नेत्र विकार, यूरेनिया आदि रोग हो जाते हैं। पीड़कनाशी के जल में घुलने पर खाद्य श्रृंखला के माध्यम से, फसलों के माध्यम से मानव व अन्य प्रणियों पर प्रदूषित जल का हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

जल प्रदूषण का नियंत्रण

पीने के पानी को फिटकरी या क्लोरीन से शुद्ध करना चाहिए। कीटनाशी का प्रयोग सावधानी से और तनु रूप में किया जाना चाहिए तथा बाजार की सब्जियों को पोटोश के जल में धोकर फिर उपयोग में लाना चाहिए। सीवेज उपचार यंत्रों तथा सेप्टिक टैंक का प्रयोग उत्तम है। सड़ी हुई या मृत वस्तुओं को जल में न बहाकर जला देना चाहिए। भारत सरकार द्वारा जल अधिनियम, 1974 का कड़ाई से पालन करना चाहिए और इस कार्य में शासन को पूर्ण सहयोग देना चाहिए।

इसके अतिरिक्त अन्य कई कारण हैं :- मृदा प्रदूषण, सागरीय प्रदूषण, शोर प्रदूषण, तापीय प्रदूषण, नाभिकीय प्रदूषण आदि।

पर्यावरण संरक्षण के उपाय

पर्यावरण प्रदूषण के कुछ दूरगामी दुष्प्रभाव हैं, जो अतीव घातक हैं, जैसे आणविक विस्फोटों से रेडियो धर्मिता का आनुवांशिक प्रभाव, वायुमण्डल का तापमान बढ़ना, ओजोन परत की हानि, भू क्षरण आदि ऐसे घातक दुष्प्रभाव हैं। प्रत्यक्ष दुष्प्रभाव के रूप में जल, वायु तथा परिवेश का दूषित होना एवं वनस्पतियों का विनष्ट होना, मानव का अनेक नये रोगों से आक्रान्त होना आदि देखे जा रहे हैं। बड़े कारखानों से विषैला अपशिष्ट बाहर निकलने से तथा प्लास्टिक

आदि के कचरे से प्रदूषण की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ रही है।

अपने पर्यावरण को बेहतर बनाने के लिए हमें सबसे पहले अपनी मुख्य जरूरत 'जल' को प्रदूषण से बचाना होगा। कारखानों का गंदा पानी, घरेलू गंदा पानी, नालियों में प्रवाहित मल, सीवर लाइन का गंदा निष्कासित पानी समीपस्थ नदियों और समुद्र में गिरने से रोकना होगा। कारखानों के पानी में हानिकारक रासायनिक तत्व घुले रहते हैं जो नदियों के जल को विषाक्त कर देते हैं, परिणामस्वरूप जलचरों के जीवन को संकट का सामना करना पड़ता है। दूसरी ओर हम देखते हैं कि उसी प्रदूषित पानी को सिंचाई के काम में लेते हैं जिसमें उपजाऊ भूमि भी विषैली हो जाती है। उसमें उगने वाली फसल व सब्जियां भी पौष्टिक तत्वों से रहित हो जाती हैं जिनके सेवन से अवशिष्ट जीवननाशी रसायन मानव शरीर में पहुंच कर खून को विषैला बना देते हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि यदि हम अपने कल को स्वस्थ देखना चाहते हैं तो आवश्यक है कि बच्चों को पर्यावरण सुरक्षा का समुचित ज्ञान समय-समय पर देते रहें। अच्छे व मंहगें ब्रांड के कपड़े पहनाने से कहीं महत्वपूर्ण है उनका स्वास्थ्य, जो हमारा भविष्य व उनकी पूंजी है।

आज वायु प्रदूषण ने भी हमारे पर्यावरण को बहुत हानि पहुंचाई है। जल प्रदूषण के साथ ही वायु प्रदूषण भी मानव के समुख एक चुनौती है। माना कि आज मानव विकास के मार्ग पर अग्रसर है परंतु वहीं बड़े-बड़े कल-कारखानों की चिमनियों से लगातार उठने वाला धुआं, रेल व नाना प्रकार के डीजल व पेट्रोल से चलने वाले वाहनों के पाइपों से और इंजनों से निकलने वाली गैसों तथा धुआं, जलाने वाला हाइड्रोजन, ए.सी., इन्वर्टर, जेनरेटर आदि से कार्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन, सल्फ्यूरिक एसिड, नाइट्रिक एसिड प्रति क्षण वायुमंडल में घुलते रहते हैं। वस्तुतः वायु प्रदूषण सर्व व्यापक हो चुका है।

सही मायनों में पर्यावरण पर हमारा भविष्य आधारित है, जिसकी बेहतरी के लिए ध्वनि प्रदूषण को और भी ध्यान देना होगा। अब हाल यह है कि महानगरों में ही नहीं बल्कि गाँवों तक में लोग ध्वनि विस्तारकों का प्रयोग करने लगे हैं। बच्चे के जन्म की खुशी, शादी-पार्टी सभी में डी.जे. एक आवश्यकता समझी जाने लगी है। जहाँ गाँवों को विकसित करके नगरों से जोड़ा गया है। वहीं मोटर साइकिल व वाहनों की चिल्ल-पों महानगरों के शोर को भी मुँह चिढ़ाती नजर आती है। औद्योगिक संस्थानों की मशीनों के कोलाहल ने ध्वनि प्रदूषण को जन्म दिया है। इससे मानव की श्रवण-शक्ति का ह्रास होता है। ध्वनि प्रदूषण का मस्तिष्क पर भी घातक प्रभाव पड़ता है।

जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण और ध्वनि तीनों ही हमारे व हमारे फूल जैसे बच्चों के स्वास्थ्य को चौपट कर रहे हैं। ऋतुचक्र का परिवर्तन, कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा का बढ़ता हिमखंड को पिघला रहा है। सुनामी, बाढ़, सूखा, अतिवृष्टि या अनावृष्टि जैसे दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं, जिन्हें देखते हुए अपने बेहतर कल के लिए '5 जून' को समस्त विश्व में 'पर्यावरण दिवस' के रूप में मनाया जा रहा है।

“पौधा लगाने से पहले वह जगह तैयार करना आवश्यक है जहाँ वह विकसित व बड़ा होगा”

उपर्युक्त सभी प्रकार के प्रदूषण से बचने के लिए यदि थोड़ा सा भी उचित दिशा में प्रयास करें तो बचा सकते हैं अपना पर्यावरण। सर्वप्रथम हमें जनाधिक्य को नियंत्रित करना होगा। दूसरे जंगलों व पहाड़ों की सुरक्षा पर ध्यान दिया जाए। देखने में जाता है कि पहाड़ों पर रहने वाले लोग कई बार घरेलू ईंधन के लिए जंगलों से लकड़ी काटकर इस्तेमाल करते हैं जिससे पूरे के पूरे जंगल स्वाहा

हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य है जो छोटे-छोटे व बहुत कम आबादी वाले गांव हैं उन्हें पहाड़ों पर सड़क, बिजली-पानी जैसे सुविधाएं मुहैया कराने से बेहतर है उन्हें प्लेन में विस्थापित करें। इससे पहाड़ व जंगल कटान कम होगा, साथ ही पर्यावरण भी सुरक्षित रहेगा।

पर्यावरण संरक्षण के अत्याधुनिक ग्रीन टेक्नोलॉजी के 4 उपाय जो कमाल कर सकते हैं-

आप जानते हैं कि विविध कारणों से हमारा पर्यावरण लगातार नष्ट होता जा रहा है लेकिन दुनिया में ऐसे बहुत से जुनूनी लोग हैं जो इसे पर्यावरण संरक्षण के लिए जी-जान से प्रयास कर रहे हैं और उनका काम सतत व चुनौतीपूर्ण है। आज दुनिया में कुछ ऐसे होनहार इंजीनियर्स हैं जो वैकल्पिक ऊर्जा की नित नई व्यावहारिक योजनाएं सामने ला रहे हैं। हम आपको ऐसी अत्याधुनिक ग्रीन टेक्नोलॉजी के बारे में बताएंगे जो हमारी भावी पीढ़ियों के भविष्य को निरापद और सुखकर बनाने में सक्षम होंगी :-

1. कार्बन डाई-ऑक्साइड को साधना

हमारे पर्यावरण को बिगाड़ने में कार्बन डाई ऑक्साइड के बढ़ते स्तर का सर्वाधिक योगदान है। कुछ इंजीनियर्स यह मानते हैं कि हम वातावरण में मौजूद कार्बन डाई ऑक्साइड को कुछ विधियों से खींचकर या सोखकर उसे द्रव अवस्था में पृथ्वी की सतह के भीतर स्टोर करके रख सकते हैं या आगे कभी उपयोग में ले सकते हैं। इस दिशा में अनेक लोग प्रयास कर रहे हैं तथा तकनीकों को विकसित कर रहे हैं।



आकृति 1

2. व्यर्थ हो जानेवाली ऊष्मा का उपयोग

हाल ही में एक नई टेक्नोलॉजी सामने आई है जिसका संबंध विद्युत से है। गाड़ियों के एग्जॉस्ट पाइप या एयर-कंडिशनर से निकलनेवाली ऊष्मा को कैद करके बिजली बनाने में उपयोग में लिया जा सकता है। इस काम में किस प्रकार की मिश्र धातुओं व सामग्री का उपयोग किया जाना चाहिए इसे लेकर अभी बहुत सी बातें स्पष्ट नहीं हैं लेकिन इसपर काम किया जा रहा है।



आकृति 2

3. पानी को नमकरहित बनाना

दुनिया में ऐसी बहुत सी जगह हैं जहां पानी बहुत मूल्यवान है। बहुत से क्षेत्र पानी की कमी का संकट झेल रहे हैं। कई जगहों में पानी का खारापन दूर करने के लिए प्लांट लगाए गए हैं लेकिन उनका उपयोग बहुत खर्चीला है और केवल संपन्न देश ही उन्हें लगा सकते हैं। इन प्लांट्स की तकनीक सक्षम और सस्ती नहीं है। इससे पहले कि धरती पर पानी को लेकर त्राहि-त्राहि होने लगे, हमें ऐसी तकनीक विकसित करनी होगी कि धरती में पानी की प्राकृतिक आपूर्ति में कमी न आने पाए। पानी के खारेपन को दूर करनेवाली तकनीकों पर बहुत अधिक काम किया जा रहा है। आप किसी भी क्षेत्र से संबंधित हों लेकिन इस दिशा में काम कर रहे लोगों की सहायता करके आप पर्यावरण संरक्षण में अपना मूल्यवान योगदान दे सकते हैं।



आकृति 3

4. महासागरों और सौर ऊर्जा का उपयोग

महासागरीय ताप ऊर्जा रूपांतरण एक नई ऊर्जा तकनीक है जिसमें समुद्र के पानी में व्याप्त ऊष्मा को बिजली में बदलने की दिशा में काम किया जा रहा है। ऐसा इसलिए संभव है क्योंकि समुद्र में अनेक स्थानों पर पानी के तापमान में अंतर होता है। समुद्र की ऊपरी सतह गर्म और भीतरी सतहें ठंडी होती हैं।



आकृति 4

तापमान के इस अंतर से टरबाइनें चलाई जा सकती हैं जो जनरेटर्स की मदद से बिजली बनाती हैं। यह तकनीक अभी शैशवकाल में है और इसे अधिक सक्षम बनाने के प्रयास जारी हैं। ऊपर बताई गई कई तकनीकों भविष्य को निखारने की दिशा में पहले कदमों की भांति हैं।

पर्यावरण तथा सतत विकास

सतत विकास सामाजिक-आर्थिक विकास की वह प्रक्रिया है जिसमें पृथ्वी की सहन शक्ति के अनुसार विकास की बात की जाती है। यह अवधारणा 1960 के दशक में तक विकसित हुई जब लोग औद्योगिकरण के पर्यावरण पर हानिकारक प्रभावों से अवगत हुए। सतत विकास का उदभव प्राकृतिक संसाधनों की समाप्ति तथा उसके कारण आर्थिक क्रियाओं तथा उत्पादन प्रणालियों के धीमे होने या उनके बंद होने के भय से हुआ। यह अवधारणा

उत्पादन-प्रणालियों पर नियंत्रण करने वाले कुछ लोगों द्वारा प्रकृति के बहुमूल्य तथा सीमित संसाधनों के लालचपूर्ण दुरुप्रयोग का परिणाम है। सतत विकास कोयला, तेल तथा जल जैसे संसाधनों के दोहन के लिए उत्पादन तकनीकों, औद्योगिक प्रक्रियाओं तथा विकास की न्यायोचित नीतियों के संबंध में दीर्घकालीन योजना प्रस्तुत करता है।

सतत विकास की अवधारणा का उदय

सतत विकास की अवधारणा की शुरुआत 1962 में हुई जब वैज्ञानिक रॉकल कारसन ने 'दी साइलेंट स्प्रिंग' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक ने कीटनाशक डी.डी.टी. के प्रयोग से वन्य जीवन को होने वाले नुकसान की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया। यह पुस्तक पर्यावरण, अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक पक्षों के मध्य परस्पर संबंधों के अध्ययन में मील का पत्थर साबित हुई। 1968 में जीव विज्ञान शास्त्री पॉल इहरलिच ने अपनी पुस्तक 'पापुलेशन बम' प्रकाशित की जिसमें उन्होंने मानव जनसंख्या, संसाधन दोहन तथा पर्यावरण के बीच संबंधों पर प्रकाश डाला। 1969 में गैर-सरकारी संख्या फ्रेण्ड्स ऑफ दी अर्थ बनाई गई जिसे पर्यावरण की रक्षा में नागरिकों को भाग लेने हेतु सशक्त बनाने के लिए समर्पित किया गया। 1971 में आर्थिक सहयोग तथा विकास संगठन ने 'प्रदूषक खर्चा दे' सिद्धांत बनाया जिसमें यह कहा गया कि प्रदूषण फैलाने वाले देशों को उसकी कीमत देनी चाहिए। 1972 में मेसाचूसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी से युवा वैज्ञानिकों के एक समूह 'क्लब ऑफ रोम' ने अपनी रिपोर्ट 'लिमिट्स टू ग्रोथ' प्रकाशित की जिसने पूरे विश्व में हलचल मचा दी। इस रिपोर्ट में वर्तमान विकास दर को धीमा न करने पर गंभीर परिणामों की भविष्यवाणी की गई।

1972 में स्वीडन की राजधानी स्टॉकहोम में पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन का आयोजन हुआ। पहली बार विश्व समुदाय में इस बात पर सहमति हुई कि पर्यावरण संकट एक गंभीर मुद्दा है। इससे संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की स्थापना हुई। सतत विकास की अवधारणा का विकास सबसे पहले 1987 में ब्रिटलैंड आयोग की रिपोर्ट 'अवर कॉमन फ्यूचर' के प्रकाशन के साथ हुआ। इसमें सतत विकास को विकास की एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखा गया जो वर्तमान पीढ़ियों की आवश्यकताओं के साथ-साथ भविष्य की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखता है। 1992 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने ब्राजील की राजधानी रियो डि जेनेरो में पृथ्वी शिखर सम्मेलन का आयोजन किया। यह पर्यावरण संरक्षण पर अब तक का सबसे बड़ा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन था जिसमें 182 देशों के 20,000 से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। दिसम्बर, 1992 में सतत विकास के कार्यक्रमों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए संयुक्त राष्ट्र सतत विकास आयोग का गठन किया गया। इसी क्रम में 2002 में जोहान्सबर्ग में सतत विकास पर विश्व सम्मेलन, 2005 में कनाडा के मोंट्रियल शहर में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन, 2006 में न्यूर्यॉर्क में वनों के सतत विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन तथा दिसम्बर, 2007 में इंडोनेशिया के बाली द्वीप में जलवायु परिवर्तन पर सम्मेलन आयोजित किया गया।

सतत विकास की अवधारणा आर्थिक विकास नीतियों को पर्यावरण के अनुरूप बनाने पर जोर देती है। इसका उद्देश्य पर्यावरण के विरुद्ध चलने वाली विकास नीतियों में बदलाव लाना है। सतत विकास की सबसे अच्छी परिभाषा ब्रेंटलैंड आयोग ने अपनी रिपोर्ट 'अवर कॉमन फ्यूचर' (1987) में दी। उसने सतत विकास को ऐसा विकास कहा 'जो भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति से बिना समझौता किए बिना वर्तमान की आवश्यकताएँ पूरी करता है।'

इस रिपोर्ट में कहा गया है कि विकास हमारी आज की जरूरतों को पूरा करे, साथ ही आने वाली पीढ़ियों की जरूरतों की भी अनदेखी न करे। आयोग का कहना है कि, 'सतत विकास न केवल पर्यावरण से सामंजस्य लाना है बल्कि यह एक परिवर्तन की प्रक्रिया है जिसमें संसाधनों का दोहन, निवेश की दिशा, तकनीकी विकास की स्थिति, तथा संस्थात्मक परिवर्तनों को वर्तमान के साथ-साथ भविष्य की आवश्यकताओं के भी अनुकूल बनाया जा सके। यह आर्थिक विकास की दौड़ के प्रति विश्व को सचेत करता है ताकि विकास तो हो परढतु प्राकृतिक संसाधनों की समाप्ति अथवा पर्यावरण को क्षति पहुंचाये बिना। ब्रेण्टलैंड आयोग की रिपोर्ट के बाद सतत विकास की अनेक व्याख्याएँ आई हैं, जैसे :-

1. परिस्थितिकी व्यवस्थाओं की सहनशीलता क्षमताओं के अनुरूप मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाना।
2. ऐसी आर्थिक उन्नति जो पृथ्वी के सीमित संसाधनों को नष्ट किए बिना, विश्व के सभी लोगों को ढयाय तथा अवसर के समान अवसर प्रदान करे।
3. सतत विकास में ऐसे आर्थिक तथा सामाजिक विकास शामिल हैं जो पर्यावरण तथा सामाजिक समानता को सुरक्षित रखते हैं।

अतः सतत विकास मनुष्य ओर उसके पर्यावरण के अंतर्संबंध बताते हुए चेतावनी देता है कि मनुष्य पर्यावरण की कीमत पर विकास नहीं कर सकता क्योंकि इसमें अंतरतु मनुष्य की ही हार है। सतत विकास प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, ऊर्जा, कचरे तथा परिवहन के प्रबंध को प्रोत्साहन देता है। सतत विकास उत्पादन व उपभोग के उन आदर्शों पर आधारित विकास है जो भविष्य में पर्यावरण को नुकसान पहुंचाये बिना किया जा सकता है। इसका उद्देश्य आर्थिक गतिविधि के लाभों का समाज के सभी वर्गों में समान वितरण, मानव जाति की भलाई, तथा स्वास्थ्य की रक्षा करना व गरीबी मिटाना है। यदि सतत विकास को सफल होना है तो उसके लिए आवश्यक है कि हमारी वर्तमान जीवन शैली तथा पर्यावरण पर उसके प्रभाव के संबंध में व्यक्तियों तथा सरकारों के दृष्टिकोणों में सुधार हो।

सतत विकास के उद्देश्य

सतत विकास के कुछ दूरगामी तथा व्यापक उद्देश्य हैं जो जाति, धर्म, भाषा तथा क्षेत्रीय बंधनों से मुक्त हैं। ये उद्देश्य शोषणकारी मानसिकता की जंजीरों से अर्थव्यवस्था की मुक्ति हेतु ऐसा अधिकार पत्र है जिन्होंने राष्ट्रों की जैव संपदा को नष्ट होने से बचाया है, संक्षेप में ये उद्देश्य निम्न हैं—

1. पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों को दुरुप्रयोग से बचाना,
2. ऐसी नई वैज्ञानिक तकनीकों की खोज हो जो प्रकृति के नियमों के अनुरूप कार्य करें,
3. विविधता की रक्षा करना तथा विकास की नीतियों में स्थानीय समुदायों को शामिल करना,
4. शासन की संस्थाओं का विकेंद्रीकरण करना और उन्हें अधिक लचीला, पारदर्शी तथा जनता के प्रति उत्तरदायी बनाना,
5. ऐसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की योजना बनाना जो निर्धन देशों की आवश्यकताओं को समझकर बिना उनके पर्यावरण को नष्ट पहुंचाये, उनके विकास में मदद करें,
6. अधिकांश लोगों के जीवन-स्तर को समानता तथा न्याय के अनुरूप बनाना,
7. विश्व के सभी राष्ट्रों में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को बढ़ाना क्योंकि केवल शांति ही मानवता के व्यापक हितों की रक्षा सुनिश्चित करती है।

सतत विकास एक मूल्य आधारित अवधारणा है, जो परस्पर सह-अस्तित्व तथा सभी के लिए सम्मान जैसे आदर्शों की मांग

करता है। यह एक निरन्तर विकास प्रक्रिया है जो सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा पर्यावरणीय घटकों में सामंजस्य पर आधारित है।

ग्रहण क्षमता की अवधारणा

ग्रहण क्षमता एक ऐसी अवधारणा है जो प्राकृतिक संसाधनों तथा विभिन्न प्रजातियों की मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता को प्रदर्शित करता है। यह भूमि, जल तथा वायु की अपने को विभिन्न प्रदूषणों से स्वयं रक्षा की क्षमता को दर्शाता है। 1933 में प्रसिद्ध अमेरिकी वन्य जीवन संरक्षक वैज्ञानिक एल्डो लिओपोल्ड ने ग्रहण क्षमता को एक चरम सीमा कहा जिसमें चारा खाने वाली एक विशिष्ट जाति की संख्या इतनी बढ़ जाती है कि चारागाह उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। यदि इस क्षमता से अधिक चरने की कोशिश की गई तो चारागाह जमीन की गुणवत्ता में निरंतर गिरावट आएगी। इसी प्रकार रासायनिक खाद तथा कीटनाशक दवाइयों से फसल का उत्पादन बढ़ता है परन्तु धरती की सहन क्षमता से अधिक इनका प्रयोग करने पर फसलों का नाश हो जाता है। पृथ्वी की सहनक्षमता को एक प्रकार की फसल बोने, प्रदूषण, अधिक जनसंख्या, वन विनाश तथा शहरीकरण से भी खतरा है। अतः ग्रहण क्षमता का सिद्धान्त मानव को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति पृथ्वी की सहन क्षमता के अंदर करने की बात करता है।

अंतर्पीढीय समानता तथा न्याय

अंतर्पीढीय समानता का अर्थ पृथ्वी के संसाधनों का पीढियों के बीच इस प्रकार के उपयोग से है जिससे कि वर्तमान पीढी उनका इतना उपभोग न करे कि वे आने वाली पीढियों के लिए समाप्त ही हो जाएँ। प्राकृतिक संसाधनों की समानता पोषणकारी विकास का आधार है। यह सुनिश्चित करता है कि क्या सभी लोगों के समान अधिकार, समान अवसर तथा सामुदायिक संसाधनों पर बराबर पहुँच है या नहीं। अंतर्पीढीय समानता वर्तमान तथा भविष्य की पीढियों के बीच संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण से संबंध रखता है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हम वर्तमान आवश्यकताओं को नजर अंदाज करें बल्कि यह हमारी आज की जरूरतों की पूर्ति के साथ-साथ भविष्य की आवश्यकताओं की बीच संतुलन बनाने की कोशिश है। वर्तमान उपभोक्तावादी विश्व ने एक गैर-पोषणकारी जीवनशैली को जन्म दिया है। व्यक्ति तथा राष्ट्र कोई भी प्राकृतिक संसाधनों के दुरुपयोग को लेकर चिंतित नहीं है। अतः हमारी भविष्य की पीढियों के पास एक अधिक प्रदूषित तथा गरीब विश्व होगा। अंतर्पीढीय समानता का अर्थ है कि हमारी नीतियों को वर्तमान आवश्यकताओं के साथ-साथ भविष्य की आवश्यकताओं तथा हमारे बाद इस विश्व में रहने वालों की आवश्यकताओं को भी प्राथमिकता देनी होगी।

लैंगिक असमानता

सतत विकास का अन्य आधारस्तंभ लैंगिक असमानता दूर करना भी है। इस बात को माना गया है कि महिलायें पर्यावरण के सबसे नजदीक हैं तथा पर्यावरण संरक्षण में एक अहम भूमिका निभाती हैं। परन्तु वर्तमान विकास नीतियों में उनको कोई स्थान नहीं दिया जाता जिसका सीधा प्रभाव पर्यावरण विनाश रहा है। सततशीलता की मांग पर्यावरण-नारीवादी आंदोलनों के केन्द्र में है। अफ्रीका में हरित पट्टी आंदोलन, भारत के चिपको आंदोलन, पश्चिमी घाट के एपिको आंदोलन तथा नर्मदा बचाओ आंदोलनों ने यह प्रदर्शित किया है कि विकास नीतियों में नारियों की आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं दिया गया है। जंगल के ठेकेदार, तटीय क्षेत्र में मछली पकड़ने की आधुनिक मशीनें, आधुनिक वन प्रबंध, व्यापारिक फसलें, लुप्त

होते प्राकृतिक संसाधन महिलाओं के आधारभूत परम्परागत अधिकारों को छिनते जा रहे हैं। यह विकास प्रक्रिया अंततः पर्यावरण विनाश को प्रोत्साहन दे रहा है। अतः सतत विकास लैंगिक समानता को पर्यावरण संरक्षण की एक अनिवार्य आवश्यकता मानता है।

सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता

सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता सतत विकास का एक और महत्वपूर्ण आदर्श है। विश्व की सामाजिक व सांस्कृतिक विविधता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि 160 देशों में लगभग 820 जातीय समूह हैं। लगभग चार प्रतिशत जनजाति उन क्षेत्रों में निवास करते हैं जहाँ पर वनस्पति तथा जीव-जंतुओं की अत्यधिक विभिन्नता है। स्थानीय संसाधनों के उपयोग में वहाँ के समुदाय स्थानीय मूल्यों का संरक्षक होता है क्योंकि उसे स्थानीय संसाधनों के जीवन चक्र व मूल्य का अच्छा ज्ञान होता है। एक बार उन्हें विस्थापित कर देने पर बाहरी लोग आ जाते हैं जो बड़ी कूरता से पृथ्वी के मूल्यवान व सीमित संसाधनों का दोहन तथा अति-उपभोग करते हैं। स्थानीय लोगों के परम्परागत अधिकारों की सुरक्षा से जैव विविधता तथा स्थानीय संस्कृति की सुरक्षा होती है जो अंततः पर्यावरण सुरक्षा प्रदान करता है। भारत के हिमालय क्षेत्र का चिपको आंदोलन इसका एक सुन्दर उदाहरण है। अतः सतत विकास नीतियों को इस प्रकार बनाने पर बल देना है जिसमें स्थानीय समुदाय की जीवनशैली, उनकी मूलभूत आवश्यकताओं तथा संस्कृति की विविधता बची रहे क्योंकि स्थानीय लोग स्वयं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षक हैं।

संसाधनों के अंधाधुन्ध उपभोग की प्रवृत्ति पूरी मानवता के लिए खतरनाक साबित हो सकती है। विश्व संसाधनों की समाप्ति की ओर बढ़ता प्रतीत हो रहा है जिससे मूलभूत वस्तुओं की कीमतें बढ़ेगी, गरीबी बढ़ेगी और युद्ध भी संभव हो सकता है। ऐसा होने से रोकने के लिए उपरोक्त सिद्धांतों को लागू करना पड़ेगा जो सतत विकास का आधार है। ये सिद्धांत धरती के संसाधनों का सभी लोगों के लिए दीर्घकालीन उपयोग सुनिश्चित करते हैं।

सतत विकास के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रयास

सतत विकास के उपरोक्त उद्देश्यों तथा मूल्यों को लागू करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक प्रयास हुए हैं जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं :- स्टॉकहोम सम्मेलन सन 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानव पर्यावरण पर आयोजित सम्मेलन पर्यावरण संबंधी चिन्ताओं पर चर्चा का पहला प्रयास था। पहली बार वायु-प्रदूषण और रासायनिक विषैलेपन जैसे मुद्दे विश्व स्तर पर चर्चा का विषय बने। स्टॉकहोम सम्मेलन में इस बात पर सहमति बनी कि पर्यावरण संरक्षण के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिसमें अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सहयोग अनिवार्य हैं। स्टॉकहोम सम्मेलन के परिणामस्वरूप एक स्टॉकहोम घोषणा पत्र जारी किया गया जिसमें मानव पर्यावरण की रक्षा के लिए 26 सिद्धांत तथा उनको क्रियान्वित करने के लिए 106 सुझाव शामिल किए गये। इस सम्मेलन के परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम का गठन हुआ जो पर्यावरण संबंधी कार्यक्रमों को समन्वय तथा लागू करने को मुख्य तंत्र बना।

पर्यावरण तथा विकास पर विश्व आयोग की स्थापना

1983 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने नार्वे की प्रधानमंत्री ग्रो हारलम ब्रण्डटलैण्ड की अध्यक्षता में पर्यावरण व विकास पर विश्व आयोग की स्थापना की। आयोग की रिपोर्ट 1987 में 'अवर कॉमन पयूचर' के नाम से प्रकाशित हुई। इसमें विकास को एक नई परिभाषा दी गई। अब विकास को पर्यावरण संरक्षक बनाने की बात कही गई।

इसलिए इसमें एक नये शब्द 'सतत विकास' का नामकरण हुआ। इसका तात्पर्य है कि हम ऐसा विकास करें जो आज की पिढी की आवश्यकता के साथ-साथ आगे आने वाली पिढियों की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखे। इसमें इस बात पर भी जोर दिया गया कि विश्व के गरीब लोगों की आवश्यकताओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। साथ ही इसमें सीमितता का विचार भी दिया गया जिसका तात्पर्य था कि प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग एक सीमा तक ही किया जाना चाहिए ताकि उनसे वर्तमान के साथ-साथ भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति भी हो सके। आयोग ने पर्यावरणीय तथा आर्थिक निणयों के एकीकरण पर भी जोर दिया। यह भी कहा गया कि गरीबी से भरे संसार में स्वस्थ पर्यावरण संभव नहीं है क्योंकि गरीबी के कारण लोगों को पर्यावरण विनाशी क्रियायें करने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

पर्यावरण और विकास पर रियो घोषणा

ब्रण्डटलैण्ड आयोग की रिपोर्ट से प्रभावित होकर संयुक्त राष्ट्र संघ ने 3 जून, 1992 में ब्राजील की राजधानी रियो डि जेनीरो में एक सम्मेलन किया जिसे 'पृथ्वी सम्मेलन' के नाम से भी जाना जाता है। इसमें 182 देशों के 20,000 से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। यह पर्यावरण संरक्षण पर अब तक का सबसे बड़ा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन था। रियो उदघोषणा इस मूल विचार पर आधारित है कि व्यक्ति तथा राष्ट्र का पर्यावरण और विकास के प्रति क्या दृष्टिकोण है। इसमें कहा गया कि दीर्घकालीन आर्थिक विकास तभी सुनिश्चित किया जा सकता है जब इसे पर्यावरण की सुरक्षा से जोड़ा जाए। अगर इसे प्राप्त करना है, तो सभी राष्ट्रों को एक नई वैश्विक साझेदारी कायम करने की जरूरत है जिसमें सरकार के साथ-साथ वहाँ के लोगों तथा नागरिक समाज का भी शामिल होना जरूरी है। रियो सम्मेलन में निम्न दस्तावेज जारी किए गयेरु जलवायु परिवर्तन पर रूपरेखा संबंधी अनुबंध इस रूपरेखा में यह स्वीकार किया गया कि ग्रीन हाउस गैसों के कारण जलवायु परिवर्तन एक गंभीर समस्या है। इसलिए रियो सम्मेलन में इस समझौते पर 162 देशों ने हस्ताक्षर किए। इसका उद्देश्य एक ऐसा अंतर्राष्ट्रीय ढांचा प्रदान करना था जिसके अंतर्गत 'लॉबल वार्मिंग' के खतरे को कम करने के लिए भावी कदम उठाए जा सकें। 26 अनुच्छेदों वाला यह संधी पत्र जलवायु परिवर्तन के खतरे के विरुद्ध एक ऐतिहासिक दस्तावेज बन गया। इसमें इस तथ्य पर प्रकाश ढाला गया कि मानवीय क्रियायें जैसे जीवाश्म ईंधन को जलाना आदि पृथ्वी के वायुमंडल में बड़ी मात्रा में गैसें छोड़ रही हैं। ये गैसों जिनमें कार्बन डाई-ऑक्साइड भी शामिल है, ग्रीन-हाउस प्रभाव में वृद्धि कर रही हैं। वातावरण में बढ़ती ये गैसों 'लॉबल वार्मिंग' का कारण बन रही हैं जो कि मनुष्य और पर्यावरण दानों के लिए खतरा पैदा कर रही हैं।

जलवायु परिवर्तन समझौते का मूल उद्देश्य पर्यावरण में ग्रीन हाउस गैसों को एक स्तर पर स्थिर करना है जिससे कि वे वैश्विक जलवायु को अत्यधिक नुकसान न पहुँचा सकें। इसलिए समझौते में कहा गया है कि औद्योगिक देशों को अपने कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन स्तर को सन 2000 तक सन 1990 स्तर पर ले जाना चाहिए। जलवायु परिवर्तन समझौता सभी राष्ट्र को कुछ कार्यों के प्रति वचनबद्ध करता है, जिनमें मुख्य है :-

1. ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन की मात्रा की सूचना प्रदान करेंगे,
2. ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित करने तथा जलवायु परिवर्तन के लिए अपनाए गए कार्यक्रमों की ताजा जानकारी नियमित रूप से प्रकाशित करेंगे,
3. ग्रीनहाउस के कारण समाप्त होते हुए पौधों व वनों के संरक्षण के लिए स्वस्थ प्रबंध को बढ़ावा

देंगे, 4. जलवायु परिवर्तन के तटवर्ती क्षेत्रों, जल संसाधनों तथा कृषि पर पड़ने वाले प्रभावों के प्रति योजनाएँ बनाएँगे, 5. उन इलाकों को संरक्षण प्रदान करेंगे जो सुखे या बाढ़ से प्रभावित हैं।

जैव विविधता पर अनुबंध

जैवविविधता जीवमंडल पर जीवन की आधारभूत परिस्थितियों को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। उपलब्ध सीमित संसाधनों पर जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव ने जैव-विविधता को भीषण खतरा पहुँचाया है। जैव विविधता को बचाने के उद्देश्य से रियो सम्मेलन में 5 जून, 1992 को एक समझौता हुआ जिसे 29 दिसम्बर, 1993 को लागू किया गया। इसे 187 सदस्यों का समर्थन मिला। इस समझौते में यह प्रतिबद्धता सुनिश्चित की गई है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया के कारण भूमण्डलीय पारिस्थितिकी को क्षति न पहुँचे। जैव-विविधता समझौते के सदस्यों को निम्न कई बातों का पालन करना पड़ता है जैसे :-

1. उसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ जैव विविधता के संरक्षण एवं उनके सतत उपयोग में संरक्षण करना चाहिए।
2. जैव विभिन्नता के उन तत्वों को पहचानना जो संरक्षण में सहायक हैं तथा उनको प्रयोग में लाना चाहिए।
3. उसे खतरे से घिरी प्रजातियों की रक्षा के लिए आवश्यक कानूनी तथा अन्य प्रावधान करने चाहिए तथा उनकी परंपरागत अवस्था तथा स्थान के संरक्षण के लिए वित्तीय सहायता जुटानी चाहिए।
4. उसे ऐसे उपाय करने चाहिए जो जैव-विविधता संरक्षण के लिए प्रोत्साहन प्रदान करें। इस दिशा में समुचित शोध, प्रशिक्षण, सार्वजनिक शिक्षा तथा जागरूकता में वृद्धि लानी चाहिए।
5. परियोजनाओं के पर्यावरणीय प्रभावों के आकलन वाली विधियों को प्रयोग में लाना चाहिए जिससे जैव-विविधता बनाई रखी जा सके।
6. उसे जैव-विविधता संरक्षण तथा सतत विकास से जुड़ी सूचनाओं के आदान-प्रदान को सुगम बनाना चाहिए। इस कार्य के लिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी सहयोग भी अनिवार्य है।

विकसित देशों को जैव विविधता की रक्षा के लिए पर्यावरणिक रूप से स्वस्थ तकनीक विकसित करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। विकसित राष्ट्रों को चाहिए कि इस समझौते की शर्तों को लागू करने के लिए विकासशील देशों को सहायता प्रदान करनी चाहिए।

वन संरक्षण सिद्धांत

इसमें बताया गया है कि वन आर्थिक विकास के साथ-साथ सभी प्रकार के जीवन के लिए अनिवार्य तट्टव प्रदान करते हैं। वन लकड़ी, भोजन तथा औषधि प्रदान करते हैं जिनसे जैविक विभिन्नता बनी रहती है। वे कार्बन डाई ऑक्साइड गैस को सोख कर पृथ्वी के ताप को बढ़ने से रोकते हैं। इसके साथ-साथ वन जंगली जीवों को आश्रय देते हैं तथा हमारी सांस्कृतिक व आध्यात्मिक जरूरतों को भी पूरा करते हैं।

वन संरक्षण सिद्धांत वनों के संरक्षण के साथ-साथ राष्ट्रों को उनके वन संसाधनों से लाभ प्राप्त करने के लिए उनके अधिकारों की रक्षा भी करते हैं। यद्यपि ये सिद्धांत कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं हैं, परन्तु सतत विकास को व्यवहार में लाने के आवश्यक सुझाव प्रदान करते हैं। वन संरक्षण के कुछ प्रमुख सिद्धांत इस प्रकार हैंरु

1. सभी राष्ट्रों को वृक्षारोपण तथा वनों के संरक्षण द्वारा विश्व को

- हरा-भरा करने में अपनी भूमिका अदा करनी चाहिए।
2. वनों का प्रबंध इस प्रकार किया जाए जिससे वे वर्तमान के साथ-साथ भावी पीढ़ियों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक जरूरतों को पूरा कर सकें।
 3. उन वनों का विशेष संरक्षण होना चाहिए जिनका सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व है।
 4. वनों को हानि पहुँचाने वाले प्रदूषणकारी तत्वों को रोकना चाहिए।
 5. वनों से संबंधित योजनाएं, वनों के गैर-आर्थिक मूल्यों तथा उनके प्रबंध के पर्यावरणीय पहलुओं को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिए।

कार्यसूची-21

कार्य सूची - 21, सतत विकास की प्राप्ति के लिए एक भावी योजना के रूप में सामने आया जिसने विकास तथा पर्यावरण के मध्य सामंजस्य बनाने वाली नीति के रूप में कार्य किया। इसकी उद्देशिका में कहा गया है कि यह आज की महत्त्वपूर्ण समस्याओं को सम्बोधित करता है तथा इसका उद्देश्य अगली शताब्दियों की चुनौतियों के लिए विश्व को तैयार करना है।

रियो सम्मेलन ने पर्यावरण के महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर सारे विश्व का ध्यान आर्कषित किया। इसमें सभी देशों के प्रतिनिधियों ने यह चिंता प्रकट की कि पृथ्वी तेजी से गर्म होती जा रही है और यदि शीघ्र ही कुछ नहीं किया गया तो संपूर्ण मानव जाति का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। रियो पृथ्वी सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि के रूप में पूर्व प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंह राव ने कहा कि "पृथ्वी के संसाधनों में हाल के वर्षों में बहुत कमी आई है और संतुलन इतना गड़बड़ा गया है कि इससे आने वाली पीढ़ियों के लिए गंभीर खतरा पैदा हो गया है। अतः पर्यावरण के संरक्षण का दायित्व विकसित और विकासशील दोनों देशों का है।"

रियो सम्मेलन के केन्द्रीय मुद्दों में जलवायु-परिवर्तन, जैव विविधता तथा वन्य-संरक्षण शामिल थे। किन्तु इस सम्मेलन में विकसित तथा विकासशील देशों के मध्य स्पष्ट मतभेद उभरे। औद्योगिक देशों ने पिछले अनेक वर्षों में प्राकृतिक संसाधनों का अपने हित में खूब दोहन किया है। विकासशील देशों की मांग है कि पर्यावरण सुरक्षा के लिए विकसित देश उन्हें तकनीकी तथा वित्तीय सहायता प्रदान करें क्योंकि पर्यावरण की बिगड़ी हालत के लिए मुख्यतः वे ही जिम्मेदार हैं। इसलिए विकासशील देशों ने पर्यावरण संबंधी चिंताओं को 'सम्पनों की बीमारी' के रूप में प्रस्तुत किया। रियो सम्मेलन की सफलता या असफलता के बारे में अलग-अलग लोगों के अलग-अलग विचार हैं। परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि पहली बार संसार के इतने शीर्षस्थ नेताओं ने बिगड़ते हुए पर्यावरण एवं पृथ्वी के भविष्य के सवाल पर एक जगह एकत्र होकर चिंता प्रकट की। उनकी चिंता इस बात का संकेत है कि देर से सही पर इस दिशा में शुरुआत तो हुई।

सतत विकास पर जोहान्सबर्ग सम्मेलन

रियो शिखर सम्मेलन के दस वर्ष बाद सतत विकास का आकलन करने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने 2002 में जोहान्सबर्ग में विश्व सतत विकास शिखर सम्मेलन का आयोजन किया। सम्मेलन में एक बार फिर सतत विकास को अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रम का केन्द्रीय लक्ष्य माना गया तथा इसको लागू करने के लिए आवश्यक उपायों पर जोर दिया गया। इसमें आर्थिक-सामाजिक विकास तथा प्राकृतिक संसाधनों के बीच संतुलन के पक्षों को स्पष्ट किया गया। सतत विकास प्राप्ति के लिए कार्यक्रमों को विकसित करने तथा

सामुदायिक सहयोग की प्राप्ति हेतु सम्मेलन में 2 मुख्य दस्तोवेजों को रखा गया -सतत विकास पर जोहान्सबर्ग घोषणा तथा सतत विकास पर विश्व क्रियान्वयन योजना।

जोहान्सबर्ग घोषणा में एकत्रित सभी प्रतिनिधियों ने सतत विकास की नीति पर अपना विश्वास जताया। सभी ने यह प्रण लिया कि वे एक मानवीय, समान व सुरक्षित विश्व समुदाय का निर्माण करेंगे जिसमें मानव की गरिमा की रक्षा की जाएगी। घोषणा में सतत विकास पाने के लिए सरकार के साथ-साथ गैरसरकारी संगठनों तथा युवा वर्ग की भागिदारीता पर भी जोर दिया गया। अतः राष्ट्रों की यह सामुहिक जिम्मेदारी बन जाती है कि वे अन्तर्राष्ट्रीय सहभागिता के द्वारा सतत विकास की प्राप्ति में अपना योगदान करें ताकि पर्यावरण को वर्तमान के साथ-साथ भावी पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षित रखा जा सके।

क्योटो प्रोटोकॉल

वैश्विक तापमान में बढ़ोतरी की चुनौती से निपटने के लिए संयुक्त राष्ट्र की पहल पर वर्ष 1992 में फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज का गठन किया गया था। विकसित देशों द्वारा 'ग्लोबल वार्मिंग हेतु जिम्मेदार खतरनाक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती की बाध्यता के लिए यून एफसीसीसी द्वारा एक अंतरराष्ट्रीय समझौता तैयार करने हेतु वार्ता शुरू की गई। 11 दिसंबर, 1997 को जापान के क्योटो शहर में यून एफसीसीसी के तीसरे सम्मेलन में क्योटो प्रोटोकॉल को स्वीकार किया गया जिस पर 55 देशों ने हस्ताक्षर किए हैं। आस्ट्रेलिया समेत कई देशों ने इससे इंकार कर दिया, बाद में रूस द्वारा इसका समर्थन करने के कारण 16 फरवरी, 2005 को यह प्रोटोकॉल अस्तित्व में आ गया। इस प्रोटोकॉल के तहत दुनिया के विकसित देशों को वर्ष 2008 - 2012 तक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को घटाकर वर्ष 1995 के स्तर से 5 प्रतिशत नीचे लाने का प्रावधान किया गया है। चीन तथा भारत समेत विकासशील देशों को इस संधि के दायरे से बाहर रखा गया है। विकासशील देशों को मानना है कि उनकी आर्थिक परिस्थितियाँ उन्हें क्योटो प्रोटोकॉल के प्रति वचनबद्धता की इजाजत नहीं देती। इसलिए इन देशों ने कुछ समय के लिए छूट माँगी। इसका एक कारण यह भी है कि इन देशों का प्रदूषित गैसों में प्रति व्यक्ति उत्सर्जन विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है। उदाहरण के लिए भारत में इन गैसों का भी प्रति व्यक्ति उत्सर्जन मात्र 803 मिलियन टन है जहाँ अमेरिका में यही मात्रा 5228 मिलियन टन है। इसलिए भारत तथा चीन समेत सभी विकासशील देशों को इस संधि के दायरे से बाहर रखा गया है।

जलवायु परिवर्तन पर बाली सम्मेलन

संयुक्त राष्ट्र के नेतृत्व में इंडोनेशिया के बाली द्वीप में 3-14 दिसंबर, 2007 को जलवायु परिवर्तन पर एक सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में भारत के विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्री कपिल सिबबल के नेतृत्व में प्रतिनिधियों समेत विश्व में 190 देशों के 10 हजार से अधिक प्रतिनिधियों, वैज्ञानिकों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं ने हिस्सा लिया। कीनिया के पर्यावरण मंत्री किबुथा किबवाना की अध्यक्षता में आयोजित इस सम्मेलन में वायुमंडलीय तापमान में बढ़ोतरी के कारण आर्थिक एवं पर्यावरणीय विनाश की आशंकाओं से निपटने तथा ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन की कटौती के मुद्दे पर गंभीरतापूर्वक विचार-विमर्श किया गया तथा वैश्विक तापवृद्धि से निपटने के लिए वर्ष 2009 तक की समय सीमा तय की गई। बाली सम्मेलन के मुख्य पहलु निम्न हैं :-

- सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन की समस्या के विकराल होने को

स्वीकारा गया तथा सभी पक्षों द्वारा इसके निदान हेतु एक 'रोडमैप' पर सहमति जताई गई। इस रोडमैप के आधार पर, लोबल वार्मिंग से निपटने हेतु एक नया समझौता तैयार किया जायेगा जो वर्ष 1997 के क्योटो प्रोटोकॉल की जगह लागू किया जायेगा। इस नई संधि में वर्ष 2013 से हानिकारक गैसों के उत्सर्जन पर रोक लगाने के लिए सभी देशों को शामिल किया जायेगा।

- विकासशील देशों द्वारा ऊर्जा खपत कम करने के लिए तथा उन्नत तकनीक का इस्तेमाल करने के लिए विकसित देशों से तकनीक के साथ बौद्धिक संपदा अधिकार की भी मांग की गई। विश्व में सबसे अधिक कार्बन डाय-ऑक्साइड उत्सर्जित करने वाले देश अमेरिका ने रोडमैप को स्वीकार किया परंतु समझौते के प्रारूप को खारिज कर दिया। इस सम्मेलन में भारत ने किसी भी प्रकार का कमिटमेंट देने से मना किया तथा ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी करने हेतु एक-लक्ष्य निर्धारित करने पर जोर दिया। इस सम्मेलन का तात्कालिक लक्ष्य वायुमंडलीय तापमान में वृद्धि पर क्योटो प्रोटोकॉल को समाप्त कर एक समझौता करने हेतु वार्ता करना था। क्योंकि क्योटो प्रोटोकॉल का कार्यकाल वर्ष 2012 में समाप्त हो जायेगा। जलवायु परिवर्तन पर अगली बैठक वर्ष 2009 में डेनमार्क के कोपेनहेगेन में आयोजित की जाएगी।

सतत विकास के लिए सामुदायिक तथा नागरिक समाज के प्रयास

सतत विकास की दिशा में सबसे प्रभावशाली उपायों की समझ उन समुदायों एवं लोगों को होती है जो इनसे प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं। इसलिए पर्यावरण संरक्षण तथा सतत विकास के संबंध में नागरिक समाज की भूमिका महत्वपूर्ण रूप से बढ़ी है। पर्यावरण तथा विकास से संबंधित मामलों में नागरिक समाज को निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल करने की बात पहली बार 1992 में रियो की पृथ्वी शिखर वार्ता में स्वीकार की गई। रियो शिखर वार्ता के बाद से विश्व की विकासीय नीतियों से संबंधित मामलों में, नागरिक समाज विशेषकर गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका में निरंतर वृद्धि हुई है। 30 नवंबर, 1999 को विश्व व्यापार संगठन की हानिकारक नितियों के विरुद्ध, विश्व भर से आये हजारों लोगों ने सिएटल की सड़कों पर एकत्रित होकर इसके अधिवेशन की कार्यवाही को विफल कर दिया। भारत में लोगों के लगभग 300 प्रतिनिधियों ने विश्व विकास बैंक के अध्यक्ष को एक खुला पत्र सौंपा जिसमें विश्व बैंक के कार्यक्रम के अन्तर्गत, जैव-विविधता के संरक्षण के नाम पर, मध्य प्रदेश के कई कबीलों को वनों से वंचित करने की कार्यवाही के प्रति रोष प्रकट किया गया।

आज, पर्यावरण संरक्षण के विभिन्न पहलुओं पर अनेक अन्तर्राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठन महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। वर्ल्ड वाइड फण्ड फॉर नेचर की स्थाना 1961 में स्विटजरलैंड में हुई। यह संगठन पर्यावरण संरक्षण संबंधी सभी समस्याओं से जुड़ा हुआ है। इसने विश्व व्यापार संगठन में पर्यावरण संबंधी झगड़ों पर गैर-सरकारी संगठनों को अच्छे ढंग से नेतृत्व प्रदान किया। 1971 में स्थापित फ्रेण्ड्स ऑफ द अर्थ ने परमाणु ऊर्जा तथा हवेल के शिकार जैसे मुद्दों पर व्यापक अभियान चलाया। ग्रीनपीस जलवायु संगठन परिवर्तन, वन, महासागर, परमाणु खतरे, विषैले-रसायन, सतत व्यापार आदि विषयों पर सफल अभियान चलाये हैं। प्राकृतिक संसाधनों, तथा सांस्कृतिक सम्पत्ति के संरक्षण के लिए अर्थवाच संस्थान वैज्ञानिकों, शिक्षकों तथा आम लोगों के बीच सहयोग स्थापित करने में प्रत्यनशील है। भारत में दशौली ग्राम स्वराज संघ द्वारा चिपको आंदोलन, टिहरी बांध विरोधी संघर्ष समिति द्वारा

टिहरी बचाओं आंदोलन, नर्मदा बचाओ आंदोलन, द्वारा सरदार सरोवर परियोजना विरोधी आंदोलन, केरल सस्त्र साहित्य परिषद द्वारा साइलेंट घाटी बचाओं आंदोलन तरुण भारत संघ द्वारा जल संरक्षण आंदोलन नागरिक समाज द्वारा विकास को पर्यावरण संरक्षण आधारित बनाने की सफल मुहिम का उदाहरण हैं।

सतत विकास के समक्ष चुनौतियां

सतत विकास के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती बिना विकास की रफ्तार को रोके पर्यावरण संरक्षण तथा संसाधनों का प्रबंध करना है। यह पर्यावरण संरक्षण को आर्थिक विकास का मुख्य अंग मानता है। इसके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सर्वमान्य हलों को प्राप्त करने में उत्तर-दक्षिण विभाजन बातचीत के बीच बाधा बनता है। विकासशील देश मानते हैं कि पर्यावरण संबंधी नियमों को लागू कर विकसित देश उन्हें विकास प्रक्रिया से पिछे धकेल रहे हैं। संसाधनों का अधिकतम उपभोग विकसित देश करते हैं जबकि गरीब देशों को उपभोग की कीमत प्रदूषण, जैव विविधता ह्रास, जंगलों के कटने तथा प्राकृतिक संसाधनों के शोषण के रूप में चुकानी पड़ती है। विकसित देश गरीब देशों से उनके जंगलों तथा प्राकृतिक संसाधनों के दोहन पर प्रतिबंध की बात कर रहे हैं लेकिन वे अपने यहाँ अत्यधिक उत्पादन तथा उपभोगवादी जीवनशैली को बदलने को तैयार नहीं हैं। जलवायु सम्मेलनों अथवा क्योटो प्रावधानों पर भी विकसित तथा विकासशील देश एकमत नहीं हैं। विकासशील देशों का मानना है कि पर्यावरण प्रदूषण का मूल कारण औद्योगिक देशों की अति-उपभोक्तावादी जीवनशैली है इसलिए पर्यावरण संरक्षण अथवा सतत विकास की प्राप्ति के लिए विकसित देशों द्वारा गरीब देशों को तकनीकी तथा वित्तीय सहायता प्रदान करनी चाहिए। परन्तु इस पर भी पूर्ण सहमति नहीं बनी है। सतत विकास की अवधारणा को सैद्धान्तिक तौर पर मानना आसान है परन्तु इसको व्यावहारिक रूप में लाना उतना ही कठिन है क्योंकि इसके परिमाणों पर सहमति नहीं है। जहाँ राष्ट्रों का हित आर्थिक विकास प्राप्ति में है वहीं वास्तविक चुनौती यह है कि ऐसे विकास का ढांचा खड़ा किया जाये जो आर्थिक विकास तथा पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन बना सके।

निष्कर्ष

एक अवधारणा के रूप में सतत विकास का जन्म 1960 के प्रारंभिक वर्षों में हुआ जब विकसित देशों में अनियंत्रित औद्योगिकरण के पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव दिखने लगे। इसको रॉकल कारसन ने अपनी पुस्तक 'साइलेंट स्प्रिंग' में स्पष्ट तरीके से प्रस्तुत किया है। 1987 में ब्रुण्डलैंड आयोग की रिपोर्ट के बाद सतत विकास पर चर्चा आम हो गई है। सतत विकास आर्थिक विकास को पर्यावरण संरक्षण के साथ जोड़ता है इसका उद्देश्य वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखना है। यह चेतावनी देता है कि मनुष्य पर्यावरण की कीमत पर विकास नहीं कर सकता क्योंकि इसमें अंततः मनुष्य की ही हार है। पृथ्वी की सहनक्षमता के अनुरूप विकास, अन्तर्पीढीय समानता, न्याय, लैंगिक समानता, सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता सतत विकास के मुख्य सिद्धांत हैं।

आज अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय अपनी कार्यसूची में पर्यावरण संरक्षण को सर्वोच्च प्राथमिकता देता है। यह उन अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों से प्रमाणित होता है जिनमें विश्वभर के राजनीतिक नेताओं ने पर्यावरण-रक्षा के प्रति अपनी चिंता तथा इस दिशा में किए जाने वाले प्रयत्नों के प्रति अपने समर्थन को दोहराया है। पर्यावरण संरक्षण में गैर-सरकारी संगठन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

इनके प्रयासों से पर्यावरण संरक्षण ने एक आंदोलन का रूप ले लिया है। सतत विकास की प्राप्ति में उत्तर-दक्षिण विभाजन एक बड़ी चुनौती है। विषय की गंभीरता को देखते हुए आज आवश्यकता है कि विकसित देश इस दिशा में एक सार्थक भूमिका निभायें। उन्हें यह समझने की आवश्यकता है कि अग्रणी राष्ट्र के रूप में उन्हें एक उदाहरण स्थापित करने की जरूरत है। अंत में सतत विकास की सबसे बड़ी चुनौती आर्थिक विकास तथा पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन बनाना है क्योंकि इसी संतुलन पर मानव का अस्तित्व टिका हुआ है।

संदर्भ

1. पर्यावरण प्रदूषण और प्रबंधन, अशोक प्रधान, नीलकंठ प्रकाश, महरौली, नई दिल्ली।
2. भौतिक भूगोल, डॉ. सविंद्र सिंह, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर।
3. भूगोल, डॉ. चतुर्भुज मामोरिया, डॉ. बी.एल. शर्मा, साहित्य भवन पब्लिकेशंस।
4. राजनीति विज्ञान, डॉ. बी.एल. कड़िया, साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2004
5. कला एवं वाणिज्य कन्या महाविद्यालय देवेंद्रनगर, रायपुर (छ.ग.)
6. अलगोर, एन इनकन्वीनियन्ट टुथ :- द क्राईसिस ऑफ ,लोकल वार्मिंग, बलुम्बवरी लन्दन, 2007, पृष्ठ-9
7. बाली क्लामेट डील, हिन्दुस्तान टाइम्स, 16 दिसम्बर, 2007 पृष्ठ-18
8. आशिष कोठारी, आई.जे.पी.ए., जुलाई-सितम्बर, 1989, पृष्ठ-677
9. गौरीशंकर राजहंस, हम अपने पर्यावरण की रक्षा करें, नवभारत टाइम्स, 25 जुलाई, 1992
10. पोलिटिकल डिक्लेयरेशन एंड प्लान ऑफ इम्पलिमेंटेशन, जोहान्सबर्ग डिक्लेयरेशन ऑन सस्टेनेबल डिवेलपमेंट, युनाइटेड नेशन्स, 2003 पृष्ठ-12-13
11. ऑवर कॉमन फ्युचर, वर्ल्ड कमीशन ऑन इन्वायरनमेंट एनड डिवेलपमेंट, ऑक्सफोर्ड प्रेस, दिल्ली, 1987
12. स्पेशल इशु ऑन सस्टेनेबल डिवेलपमेंट, आई.जे.पी.ए., आई. आई.पी.ए., जुलाई-सितम्बर, 1993
13. अल गौर, एन इनकन्वीनियन्ट टुथ :- द क्राईसिस ऑफ ,लोकल वार्मिंग, बलुम्बवरी, लन्दन, 2007
14. डी.सी. बैरी एवं एस बास, सस्टेनेबल डेवलेपमेंट स्ट्रेजिट :- ए रिसोर्सबुक, अर्थस्केन पब्लिकेशन, लंदन, 2002
15. एच.ई.डाले, बियाण्ड ग्रोथ रू दी इकोनॉमिक्स ऑफ सस्टेनेबल डेवलेपमेंट, बीकन, बोस्टन, 1996
16. एस. ड्रेसनर, दी प्रिंसिपल्स ऑफ सस्टेनेबल डेवलेपमेंट, अर्थस्केन, लंदन, 2002
17. डी. रेड, सस्टेनेबल डेवलेपमेंट :- एन इंट्रोडक्टरी गाइड, अर्थस्केन, लंदन, 1995
18. तपन बिसवाल, मानवाधिकार, जेन्डर एवम पर्यावरण, वीवा, 2008